मान्य मनीषी महामहोपाध्याय पं. श्री गोपीनाथ कविराज

गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
अध्यक्ष राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान
परिषद् एवं साहित्य सरोवर

जिन कविराज जी के जीवन से मैं आपको अवगत करा रहा हूँ, वे एक प्रज्ञावान पुरुष थे, वर्तमान युग के महान् तत्वचिन्तक थे, भारत के विद्वत् परम्परा के कीर्तिस्तम्भ थे, ज्ञान-विज्ञान की प्रेरणा के प्रकाशपुंज थे, वे वस्तुतः तपः पूत विशिष्ट मान्य मनीषी थे। ऐसे महापुरुषों की लोकयात्रा लोक शिक्षा के लिये ही होती है। अतः उनके जीवन से शिक्षा ग्रहण कर उदात्त पंथ पर चलते हुये जीवन को सफल बनाना चाहिये।

आपके प्रपितामह कमलाकान्त, पितामह चन्द्रनाथ और पिता वैकुण्ठनाथ थे। आपकी माता का नाम सुखदा सुन्दरी था। आपके पिता के मित्रों में जगत् प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द और भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद के गुरु सतीशचन्द्र मुखर्जी प्रमुख थे। भगवान् गोपीनाथ आपके गृहदेवता थे। दोनों माता-पिता इन अपने गृहदेवता की आराधना में संलग्न रहते थे। अतः इनकी कृपा से प्राप्त पुत्र का नाम भी गोपी नाथ रखा गया। आपका जन्म सात सितम्बर सन् 1887 ई. में अपने पिता की मृत्यु के पाँच माह पश्चात् हुआ था।

गोपीनाथ जी की प्रारम्भिक शिक्षा उनके मूल गाँव कांठालिया (बंगाल) में हुई। आपके संस्कृत भाषा के गुरू पं. श्रीहाराजचन्द्र चक्रवर्ती तथा पं. श्रीप्रसन्न कुमार चक्रवर्ती थे। पिता की मृत्यु के बाद आपके अन्यतम अभिभावक पं. श्री कालाचन्द सान्याल थे। इन्होंने कविराज जी का विवाह तेरह वर्ष की आयु में ही कुसुम-कामिनी देवी के साथ करवा दिया। इस विवाह के एक वर्ष पश्चात् ही कालाचन्द जी का स्वर्गवास हो गया जिससे आपको बड़े आर्थिक संकट से गुजरना पड़ा। कालाचन्द जी की सम्पत्ति पट्टिदारों ने हड़प ली थी। कालाचन्द जी के मित्र शाह भैरव नाथराय ने ही आपके अध्ययन की पूरी व्यवस्था की, जिससे आप ढाका के जुबली स्कूल में पढ़ने लगे। यहाँ पर आपने संस्कृत भाषा के साथ साथ अंग्रेजी का भी विधिवत् ज्ञान प्राप्त किया।

आगे उच्च शिक्षा के लिये आपने जयपुर (राज.) को चुना क्योंकि आपको ज्ञात हुआ था कि वहाँ के प्राचीन नगरनियोजक श्री विद्याधर चक्रवर्ती तथा वर्तमान प्रधान मंत्री संसार चन्द्र सेन थे। इन बंगाली महाशयों के नाम जान

कर आपको आशा बंधी थी कि वहाँ जयपुर जाने पर पढ़ाई का कोई प्रबन्ध अवश्य हो जायेगा। यह सोचकर इस निराश्रित बालक ने जयपुर जाने का निर्णय पक्का कर लिया। संकोच केवल इतना ही था कि उस समय आपको हिन्दी नहीं आती थी। उस समय आपकी आयु मात्र 19 वर्ष थी।

सन् 1906 की जुलाई में आप जयपुर आये और महाराजा कॉलेज में प्रवेश हेतु उपस्थित हुये। उस समय महाराजा कॉलेज के प्राचार्य श्री संजीवन गांगुली थे और उपाचार्य मेघनाथ भट्टाचार्य थे। मेघनाथ जी को जब यह ज्ञात हुआ यह बालक बंगाल से आया है, वे बड़े प्रसन्न हुये और आपको अपने घर ले गये और आपको अपने पास ही रखा।

तीन-चार दिनों बाद से जयपुर के तत्कालीन प्रधानमंत्री संसारचन्द्र से मिलने आप गये। प्रारम्भ में आपके बंगाली उच्चारण के कारण (शोन्शार बाबू)(परेशानी हुई किन्तु फिर आप वहाँ पहुँच गये। उन्होंने आपकी पूरी व्यवस्था करवा दी और पन्द्रह रु० मासिक छात्रवृत्ति भी दिलवा दी गई। जब आपको मालूम हुआ कि यहाँ के गोविन्ददेव पुजारी भी बंगाल से ही आये है तो आप उनसे भी मिले। इस जयपुर प्रवास के समय आपकी माताजी और पत्नी आपके ससुराल में ही रहे।

आप जयपुर में सन् 1906 से लेकर 1910 तक रहे। इस बीच आप चन्द्रधर शर्मा गुलेरी एवं पं. गौरीशंकर हीरानन्द ओझा आदि से कई बार मिले। इन्हीं दिनों आप जयपुर राज्य के तत्कालीन महा लेखा परीक्षक सत्येन्द्र नाथ मुखर्जी से भी कई बार मिले थे जिनके साथ लम्बी अध्यात्म चर्चा ये होती रहती थी। मधुसूदनजी ओझा के विषय में आपने लिखा है- जब मैं जयपुर रहा, तब एक महान् पुरुष की चर्चा चारों ओर होती रहती थी। इनका नाम था विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा । ये महाराजा जयपुर के निजी पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। ओझाजी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध था कि इन्हें प्राचीन भारत का बहुत सा लुप्त विज्ञान मालूम है। इन पर उन्होंने कई ग्रन्थों की रचना भी की है। तब तक वे ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुये थे। उस समय तक उनकी एक मात्र पुस्तक प्रत्यन्त प्रस्थान-मीमांसा मुद्रित हुई थी। मैं जयपुर में प्रधान मंत्री संसार चन्द्र सेन के मकान पर रहता था। तब वहाँ कभी कभी किसी व्याख्यान के सम्बन्ध में इन महाशय का आगमन होता था। मेरे दो परिचित पं. आद्यादत्त ठाकुर तथा पं. लक्ष्मणदत्त ओझा, मधुसूदन जी के घनिष्ट सम्पर्क में रहते थे। उनके द्वारा इनकी लोकोत्तर विद्वत्ता की कथायें सुनने में आती थी।

आगे की शिक्षा के लिये कविराज जी जयपुर से काशी चले गये। काशी में स्नातकोत्तर शिक्षा के लिये आप अपने प्रपितामह के भतीजे पं. दीनबन्धु कविराज के यहाँ रहे। आपने एम. ए. परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उत्तीर्ण होते ही लाहौर से शिक्षा प्रथम में उत्तीर्ण की। उत्तीर्ण होते ही लाहौर से प्रिंसिपल पद का तथा अजमेर मेयो कॉलेज से संस्कृत प्रोफेसर पद का नियुक्ति पत्र प्राप्त हुआ किन्तु आप दोनों स्थानों पर नहीं गये। इसी मध्य साधना में लगे रहे। सन्

1924 में गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज काशी के प्रिंसिपल पर आप नियुक्त हुये। आपने 1937 ई. में काल पूर्व ही कार्य निवृत्त होकर अपने स्वाध्याय एवं साधना में संलग्न रहे।

आपने कई सन्त-महात्माओं से सम्पर्क कर ज्ञानार्जन किया, जिनमें श्री लोकनाथ ब्रह्मचारी, स्वामीजी शिवराम किंकर, श्री भोला गिरि, नागाबाबा आदि प्रमुख हैं। आपने स्वामी श्री विशुद्धानन्द जी को अपना अध्यात्म गुरु बनाया था।

आपकी बहुमुखी प्रतिभा एवं सतत स्वाध्यायसाधना तथा तपश्चर्या से प्राप्त विविध ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी अनेकानेक अनुभवों को मूर्त रूप देने के लिये इतने आलेख लिखे कि उन सब का नामोल्लेख करना ही बड़ा कठिन कार्य है। कई मौलिक ग्रन्थ आपके प्रकाशित हुये उनमें मुख्य हैं- विशुद्धानन्द प्रसंग, अखण्ड महायोग, पूजा, विशुद्ध वाक्यामृत, भारतीय साधनार धारा, साहित्य चिन्ता आदि बंगाल भाषा के ग्रन्थ हैं। तान्त्रिक वाङ्मय में शक्ति दृष्टि, भारतीय संस्कृति और साधना, काशी की सारस्वत साधना आदि हिन्दी के ग्रन्थ हैं तथा पाँच ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखे गये है जिनमें विवखालियोग्राफी ऑफ न्याय वैशेषिक लिटरेचर प्रमुख है। इनके अतिरिक्त बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी के लगभग 21 ग्रन्थों का आपने सम्पादन भी किया। 50 से अधिक हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी में लिखे गये विविध ग्रन्थों की आपने भूमिका लिखी।

संस्कृत रत्नाकर (जयपुर-सं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी), अमरभारती (काशी), सारस्वती-सुषमा (काशी), सागरिका (सागर- म.प्र.), सूर्योदयः (काशी) आदि संस्कृत-पत्रिकाओं में आपके अनेक शोधनिबन्ध तथा आलेख प्रकाशित हुये। हिन्दी की कल्याण पत्रिका (गोरखपुर- सं. हनुमान प्रसाद पोद्दार) के अंक-विशेषांको में आपके चालीस से अधिक लेख प्रकाशित हुये, जिनमें सूर्यविज्ञान, लिंगरहस्य, शक्ति-साधना, मृत्युविज्ञान, शक्तिपात-रहस्य, दीक्षा रहस्य, भक्ति-रहस्य, योग और परकाया प्रवेश, देहसिद्धि का अभिमान और मनुष्य आदि महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रधर्म (लखनऊ), विश्व भारती (प. बंगाल) त्रिपथगा (लखनऊ), नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी) भारती (बम्बई), चिन्तामणि (काशी) आदि बहुत सी हिन्दी पत्रिकाओं में अनेक लेख प्रकाशित हुये। अकेली आनन्द वार्ता (वाराणसी) पत्रिका में आपके लगभग 50 आलेख छपे हैं। बंगला और अंग्रेजी भाषा को भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके विविध विषयों पर लेख प्रकाशित हुये हैं, जिनका नामोल्लेख करना ही बड़ा विस्तृत कार्य है।

आपके द्वारा लिखे गये पत्रों की श्रृंखला भी बहुत बड़ी है जिनमें जीवन के बहुत से आदर्श आयामों पर विस्तृत चर्चायें हुयी हैं। ये पत्र भी किन्ही शोध-प्रबन्धों से कम नहीं है। अपने जीवन की उदात्त साधनाओं की अनुभूतियों के आकलन से ये पत्र भरे पड़े हैं। किसी विषय की अनुभूति परक विवेचना को व्यक्त करने में आप सिद्धहस्त थे। ऐसी

विलक्षण प्रतिभा बहुत कम देखने को मिलती है।

कविराज जी की कृतियों में समन्वय का स्वर है। साधना और दर्शन की विभिन्न विरोधी शाखाओं में आपकी असाधारण पैठ का यही रहस्य है। इस साधना के मूल कारण है- सद्गुरु की शुद्ध-विद्यात्मिका कृपा दृष्टि का प्रभाव तथा आगम शास्त्र का सतत परिशीलन। जहाँ तक सद्गुरु की कृपा दृष्टि का सम्बन्ध है, अपने जीवन काल में विशुद्धानन्द साधना-सूत्र का संचालन करते ही रहे, तिरो धान के बाद भी वे आप से अपना भावसम्बन्ध बनाये रहे। विविध साधना मार्गो के पहुँचे हुये सन्त-महात्माओं का सम्पर्क भी आपकी इस समन्वय दृष्टि के विकास में सहायक सिद्ध हुआ। इसकी पुष्टि आगमसाहित्य के जीवन-व्यापी स्वाध्याय से हुई। आपकी यह धारणा रही कि अब तक विश्व में जिन दिव्य शक्तियों, महापुरुषों, धर्मप्रवर्तकों, सिद्धों आदि के रूप में प्रादुर्भाव होता रहा है, उनका उद्देश्य धर्म संस्थापना के लिये, सज्जनों की रक्षा, दुष्टों के लिये दण्ड व्यवस्था तथा युगचेतना के अनुकूल ज्ञान, भक्ति एवं योग के नवीन मार्गों का उद्घाटन करना रहा है।

आपके चिन्तन का सार यह है कि वैदिक, अवैदिक, शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि नाना प्रकार के विद्या प्रस्थान है। इनमें न कोई किसी से बड़ा है और न कोई छोटा। मनुष्य की रुचि तथा अधिकार के भेदानुसार इनमें से कोई किसी के लिये उपादेय तथा हितकारी होता है और कोई किसी के लिये। किन्तु मार्ग भिन्न होने पर भी सभी का परम लक्ष्य एक ही है। परमसत्ता में किसी प्रकार का विकल्पावरण नहीं रहता है। जितने भेद विकल्प राज्य में हैं वे मार्गरूप हैं। इन विकल्पों का अतिक्रमण हो जाने पर द्वन्द्वातीत अवस्था स्वतः आ जाती है।

जब कविराज जी मात्र छह वर्ष की अवस्था में थे तब शिकागों में दिये अपने वक्तव्य में भी इसी बंग भूमि के सपूत स्वामी विवेकानन्द ने भी इस प्रकार के उद्गार प्रकट किये थे- मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौमिक धार्मिक स्वीकृति, दोनों की शिक्षा दी है। हमें सिखाया गया है कि जैसे सीधे-टेढ़े मार्गो से बहती हुई सभी नदियां अन्त में समुद्र में ही पहुँचती हैं, उसी प्रकार सभी मतानुसार्य उस एक परम शक्तिमान के ही पास पहुँचते हैं-

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।